इकाई 19 मौर्य साम्राज्य की अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य मौर्य इतिहास के एक महत्वपूर्ण पहलू से आपको परिचित कराना है। यह महत्वपूर्ण पहलू है, मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था। मौर्यों के शासनकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था के संगठन और स्वरूप में काफी परिवर्तन हुए। हालांकि हम चर्चा के केन्द्र में मौर्यों के मुख्य प्रभाव-क्षेत्र गंगाघाटी को ही रखेंगे, परन्तु इस काल में भारत के अन्य भागों में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर भी प्रकाश डाला जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- समझ सकेंगे कि साम्राज्य के लिए आवश्यक विभिन्न संसाधनों का उत्पादन कैसे होता था;
- इस काल की खेतिहर अर्थव्यवस्था, कृषि विस्तार और भू-राजस्व जैसे महत्वपूर्ण तत्वों की चर्चा कर सकेंगे;
- यह व्याख्या कर सकेंगे कि व्यापार की व्यवस्था कैसे होती थी और कैसे इसके विस्तार के साथ नए कार्य-क्षेत्र सामने आए;
- नगरों के विकास और नगरीय योजना तथा अर्थव्यवस्था संबंधी अन्य विशेषताएं बता सकेंगे; तथा
- इस काल में हुए तकनीकी विकास पर बहस कर सकेंगे और विश्लेषित कर सकेंगे कि इन परिवर्तनों से किस प्रकार सामाजिक-आर्थिक बदलाव आया।

19.1 प्रस्तावना

इस खंड की इकाई 18 में आपने मौर्य साम्राज्य की व्यवस्था और विस्तार का अध्ययन किया है। इस इकाई में हम आपको मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था से परिचित कराएंगे। खंड 4 में आपने मौर्य-पूर्व अर्थव्यवस्था की प्रकृति का अध्ययन किया होगा। यहां हम मौर्यकाल में होने वाले परिवर्तनों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। सबसे पहले हम कृषिक और गैर-कृषिक उत्पादन के भौतिक और सामाजिक आधार पर चर्चा करेंगे। कृषिक अर्थव्यवस्था का अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि उस समय खेती में ही सबसे ज्यादा लोग लगे हुए थे। भू-राजस्व के तरीके और उसके संगठन की जानकारी भी आपको दी जाएगी। इसके अतिरिक्त, अन्य आर्थिक गतिविधियों पर कृषिक अर्थव्यवस्था के प्रभाव की भी चर्चा की जाएगी। हस्तशिल्प उत्पादन और वाणिज्यिक गतिविधियों पर विशेष रूप में इसका प्रभाव दिखाई देता है। इन क्षेत्रों में विकास के कारण निम्नलिखित परिवर्तन हुए :

- तकनीक का विकास हुआ;

- मुद्रा का चलन बढा; और
- नगरीय केंद्रों का तेजी से विकास हुआ।

एक महत्वपूर्ण पक्ष, अर्थव्यवस्था और आर्थिक कार्यकलाप में राज्य की भूमिका पर भी विचार किया जाएगा। हम इस बात पर भी ध्यान देंगे कि अर्थव्यवस्था में राज्य किस हद तक हस्तक्षेप करता था? इस हस्तक्षेप से अर्थव्यवस्था के विकास में सहायता मिलती थी या बाधा पडती थी? इस इकाई में ऐसे और इससे संबंधित अनेक प्रश्नों पर विचार किया जाएगा।

19.2 उत्पादन का भौतिक और सामाजिक आधार

आपने खंड 4 में पढ़ा होगा कि प्रथम सहस्राब्दि ई.पू. के उत्तरार्द्ध में खेती के लिए लोहे का उपयोग होने लगा था। इसके परिणामस्वरूप काफी मात्रा में अधिशेष उत्पादन हुआ। इस अधिशेष से न केवल समाज का भौतिक आधार परिवर्तित हुआ, बल्कि नए सामाजिक वर्ग भी सामने आए। यह नया सामाजिक वर्ग मुख्य रूप से नए विकसित हो रहे शहरों में रहने लगा।

यूनानी लेखक एरियन बताता है कि शहर इतने अधिक थे कि उनकी सही संख्या बताना मुश्किल है। इस वक्तव्य से यह आभास होता है कि इस काल में शहरों की संख्या तेजी से बढ़ी होगी। मेगस्थनीज़ ने सुव्यवस्थित और सुगठित नगर प्रशासन की चर्चा की है, इस बात से भी इन नगरीय केंद्रों में बढ़ रही जनसंख्या का संकेत मिलता है। इन शहरों में रहने के नियम बडे कठोर थे। हालांकि इस काल की नगर योजना का कोई ठोस सबूत उत्खनन से प्राप्त नहीं हो सका है और मौर्यकालीन वास्तुकला के अवशेष भी बहुत कम मात्रा मे प्राप्त हुए हैं; परन्तु उत्तर प्रदेश और बिहार में हुए उत्खननों से प्राप्त अवशेषों से पता चलता है कि उस काल में इमारत बनाने के लिए पक्की ईंटों का उपयोग होता था। घर लकड़ियों से बनाए जाते थे। मेगस्थनीज ने मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र में बने लकड़ी के घरों की चर्चा की है। कुम्हरार (आधुनिक पटना) में हुई खुदाई के दौरान मौर्यकाल के खम्भों वाले विशाल कक्ष के अवशेष प्राप्त हुए हैं। खुदाई के दौरान बहुत सी मौर्यकालीन कड़ियां प्राप्त हुई हैं, जिन्हें लगाकर कुओं से पानी खींचा जाता होगा; इन कड़ियों का उपयोग घरेलू कार्य के लिए होता होगा। बाद के वर्षों में यह तकनीक देश के अन्य भागों में भी फैल गई। कुओं से पानी खींचने के लिए कड़ियों का उपयोग और पकी ईंटों का व्यापक प्रयोग इस काल में हुए भौतिक विकास को प्रमाणित करता है। इससे यह भी पता चलता है कि लकड़ी की प्राप्ति सुलभ थी। पकी ईंटों के उपयोग, उत्तरी काले चमकीले मृद्भांडों की प्राप्ति और अन्य अवशेषों से पता चलता है कि मौर्य साम्राज्य के नगर देश के विभिन्न भागों में स्थित थे। इन मुद्दों पर आगे इस इकाई में विचार किया जाएगा।

गंगा घाटी में शहरों का उदय हुआ, भौतिक समृद्धि बढ़ी, इसका प्रमाण उपरिवर्णित भौतिक अवशेष हैं। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय तकनीकी आधार काफी मज़बूत था। अतः डी.डी. कौशाम्बी और आर.एस. शर्मा ने जोरदार ढंग से यह तथ्य सामने रखा है कि यह तकनीकी आधार लोहे के अधिक उपयोग के कारण मजबूत हुआ। इकाई 18 में यह बताया जा चुका है कि मगध साम्राज्य के आसपास लोहे की खानें थीं (आज के दक्षिण बिहार के आसपास) और महत्वपूर्ण जल और स्थल मार्ग पर उसका नियंत्रण था। उत्खनन के दौरान विभिन्न प्रकार के लोहे के औज़ार, जैसे मूठ वाली कुल्हाडी, हंसिया और शायद हल का फाल भी प्राप्त हुए हैं। इन औजारों की सहायता से पूर्वी गंगा घाटी के घने जंगलों को काटने में आसानी हुई होगी और कृषि के क्षेत्र में कुशलता भी बढ़ी होगी। दक्षिण बिहार के पूरे लौह-क्षेत्र में लोहे के छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे मिले हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि लोहा गलाने की तकनीक बहुत विकसित नहीं थी। इस काल की बहुत-सी स्थानीय भट्टियां प्राप्त हुई हैं, इससे मालूम होता है कि शायद आम आदमी भी लोहे का उत्पादन और उपयोग करता था। अर्थशास्त्र में इस बात का भी जिक्र है कि उस समय लोहा बनाने की उच्च कोटि की विभिन्न तकनीकों की भी जानकारी थी।

परन्तु, गंगा घाटी से लोहे का प्रयोग देश के अन्य भागों तक नहीं फैला। मौर्य पूर्व और मौर्यकालीन अवशेषों से पता चलता है कि भारत के दूसरे हिस्से में भी लोहे के प्रयोग तथा उपलब्धता के प्रमाण अलग से मिले हैं। यह स्पष्ट है कि गंगा घाटी की मिट्टी भारी और दुम्मटी थी। इसलिए जुताई के लिए हल में भारी लोहे की ज़रूरत पड़ती थी। लोहे का उपयोग खेती के लिए किया जाता था, परन्तु यह उपयोग यहीं तक सीमित नहीं था। लोहे के उपयोग पर राज्य का अधिकार था। अर्थशास्त्र में इस बात का जिक्र है कि कुछ खास किस्म के खननों पर राजा का एकाधिकार होना चाहिए। यह सलाह संभवतः इसलिए भी दी गई थी क्योंकि कुछ खास धातुओं का उपयोग सेना के लिए, औज़ार बनाने के लिए किया जाता था।
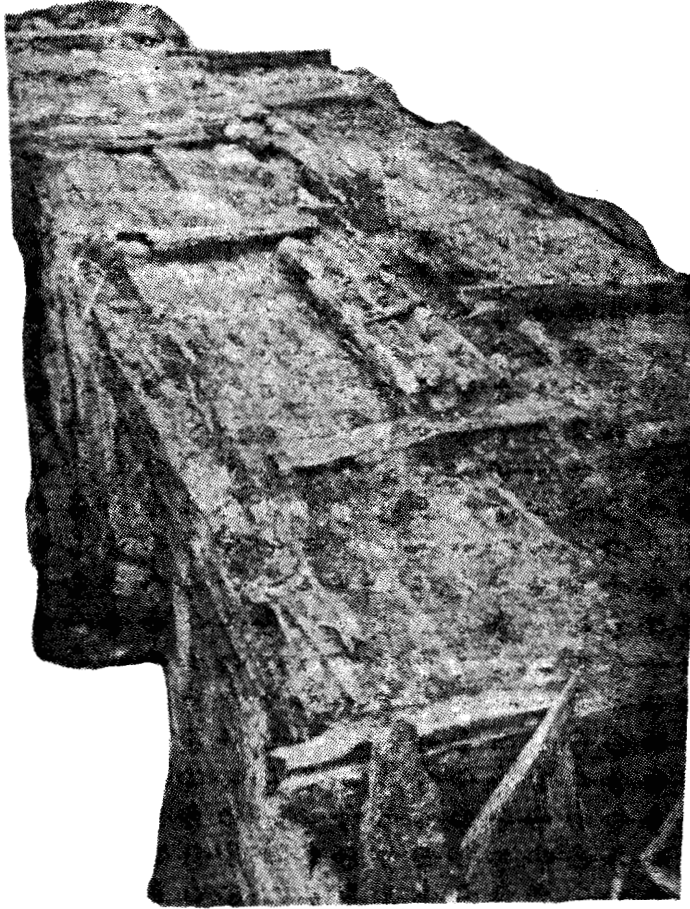
5. पाटलिपुत्र उत्खनन से प्राप्त लकड़ी के महल के अवशेष

विकासशील खेतिहर समुदायों के लिए एक मजबूत तकनीकी आधार की आवश्यकता तो होती है, साथ ही साथ सस्ती श्रम-शक्ति की भी जरूरत होती है ताकि अनाज और अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके। उत्पादन के सामाजिक आधार को जानने के लिए यह समझना जरूरी है कि इस श्रम शक्ति को कैसे संयोजित किया जाता था और इन पर नियंत्रण किस प्रकार रखा जाता था? हम पहले इस बात का जिक्र कर चुके हैं कि गंगा घाटी में नए प्रकार की खेती, खासकर धान की खेती शुरू हुई। धान की खेती में श्रम-शक्ति की ज्यादा जरूरत पड़ती है, खासकर रोपाई और कटाई के समय। किसान को इस समय अपने परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य लोगों की भी सहायता लेनी पड़ती है। इस प्रकार की खेती इस काल के दौरान लोकप्रिय हो चुकी थी। हमें इस बात का भी पता चलता है कि इस काल में नई भूमि पर खेती के लिए काफी जोर दिया जाता था। निश्चित रूप से इन नई बस्तियों में श्रम-शक्ति का अभाव रहता होगा। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि किस प्रकार राज्य नई बस्तियां बसाने के लिए प्रोत्साहन देता था।

इस संदर्भ में इन इलाकों में शूद्रों को बसाने की बात भी की गई है। वैसे भी खेतिहर मज़दूर अधिकतर शूद्र थे और उनसे ही शारीरिक श्रम का काम लिया जाता था। बहुल जनसंख्या वाले इलाकों या विजित राज्यों से उन्हें इन नई बस्तियों में लाया जाता था। कलिंग युद्ध के बाद लगभग डेढ़ लाख लोगों को नई बस्तियों में खेती के काम में लगाया गया था। अर्थशास्त्र में सलाह दी गई है कि इन बस्तियों में विदेशियों को भी बसाने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसी प्रकार, बढ़ई और व्यापारी जैसे अन्य समुदायों को भी संभवतः बसाया गया होगा। नए इलाकों में बसने वाले शूद्रों को वित्तीय सहायता, पशुधन, बीज, औजार आदि प्रदान करने का प्रावधान था। अनजुती भूमि पर खेती करने के लिए यह एक प्रकार का प्रोत्साहन था। ह्रासोन्मुख और उजड़ी बस्तियों को भी इसी प्रकार आबाद किया गया। खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए ऐसा करना जरूरी था।

कई मामलों में ये नई बस्तियां सीधे राजा के नियंत्रण में होती थीं। इस प्रकार की राजकीय भूमि को **सीता भूमि** कहते थे। कभी-कभी यह जमीन गांव के पहले के अधिकारियों को जुताई के लिए दे दी जाती थी। अगर कोई किसान खेती में कोई ढीलापन दिखाता था और उसके कारण उत्पादन में कमी आती थी तो उसे

दूसरी जगह भेज दिया जाता था। ये गांव राजकीय भूमि के हिस्से थे, अतः स्वाभाविक रूप से राजा और उनके अधिकारियों का उनपर सख्त नियंत्रण था।
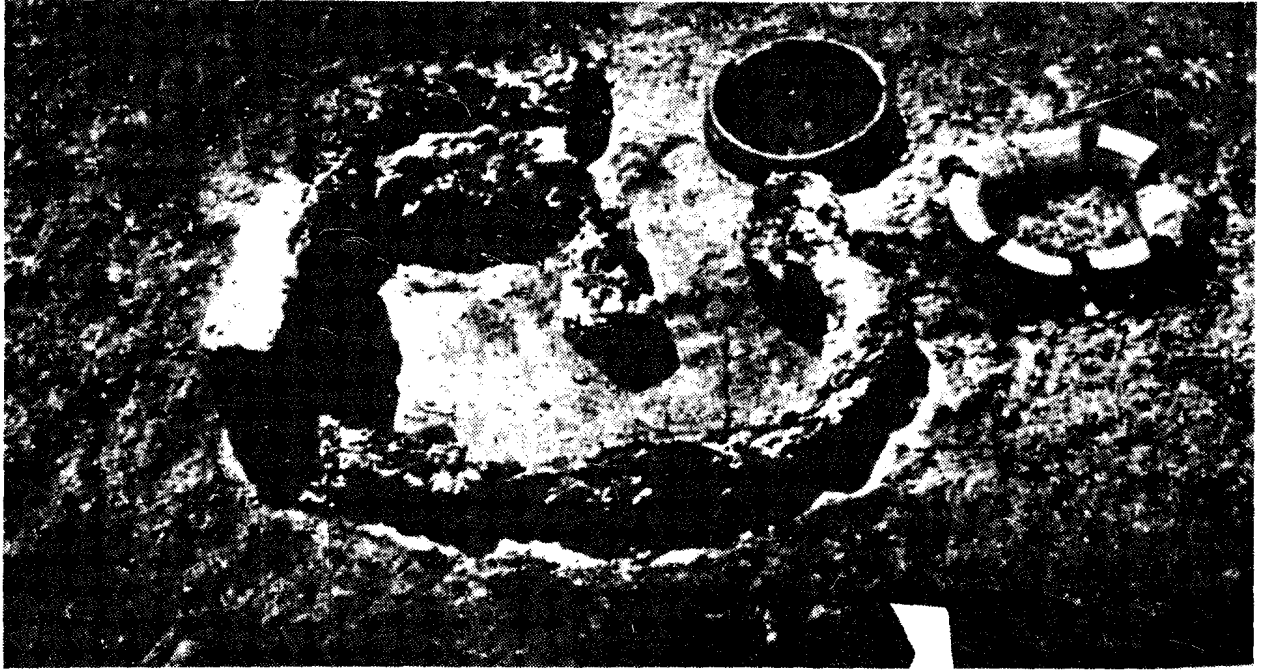
6. लोहार की भट्टी

इस प्रकार, मौर्य काल में खेती का व्यापक विस्तार हुआ। कच्चे माल और मानव-शक्ति पर नियंत्रण और उनके उपयोग के कारण यह विस्तार तेजी से हो सका। इसके बाद अब हम मौर्यों के अधीन सम्पूर्ण भारत, खासकर गंगा घाटी, में हुए भौतिक और आर्थिक विकास का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न 1

1) सही और गलत कथनों के आगे क्रमशः √ और × का निशान लगाइए :

   क) विशाल पैमाने पर खेती करने के लिए शूद्रों को लगाया जाता था। ( )

   ख) लौह तकनीक की सहायता से कृषि के विकास में काफी सहायता मिली। ( )

   ग) मौर्यकालीन भारत में प्रत्येक गांव सीधे राज्य के नियंत्रण में था। ( )

2) मौर्यों के जमाने में गंगा घाटी में होने वाले भौतिक परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए (चार पंक्तियों में)।

   ....

   ....

   ....

   ....

3) दो-तीन पंक्तियों में यह बताइए कि लोहे के उपयोग से खेती के स्वरूप में किस प्रकार का परिवर्तन हुआ?

   ....

   ....

   ....

19.3 कृषि और भू-राजस्व

इस भाग में हम कृषीय अर्थव्यवस्था और भू-राजस्व संगठन की सामान्य विशेषताओं पर विचार करेंगे।

19.3.1 कृषि अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताएं

इस इकाई में पहले हम पढ़ चुके हैं कि अर्थशास्त्र में स्थायी बस्तियां बसाने पर जोर दिया गया है ताकि कृषि अर्थव्यवस्था का विस्तार हो सके। इन बस्तियों से करों, खासकर भूमि-कर, की प्राप्ति होती थी और ये राजकीय आय के स्थायी स्रोत थे। बस्तियां बसाने की इस प्रक्रिया को जनपद निवेश कहा जाता था, परन्तु इसकी ठीक-ठीक प्रक्रिया क्या थी, यह स्पष्ट रूप से मालूम नहीं है। आर.एस. शर्मा के अनुसार यह मान लेना उचित होगा कि इस प्रकार गंगा के मैदान के अधिकांश इलाकों में खेती की जाने लगी और इसके साथ–साथ दूरस्थ इलाकों में भी कृषीय अर्थव्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया जाने लगा होगा।

कृषि के विकास से किसान या जोतदार का महत्व धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मेगस्थनीज भारतीय समाज पर टिप्पणी करता हुआ बताता है कि मौर्य समाज सात वर्णों में विभक्त था। इसमें दार्शनिक के बाद किसान का स्थान है, सैनिक तीसरे स्थान पर है। हालांकि उसका भारतीय समाज का विभाजन संबधी दृष्टिकोण बिल्कुल सही नहीं है, परन्तु यह महत्वपूर्ण बात है कि खेती में लगे किसानों की बड़ी संख्या ने उसका ध्यान आकृष्ट किया। यूनानी स्रोत, खासकर इस बात को रेखांकित करते हैं कि खेतिहरों के पास अस्त्र-शस्त्र नहीं होते थे। मेगस्थनीज यह भी बताता है कि युद्ध के दौरान किसानों को क्षति नहीं पहुँचाई जाती थी। परन्तु इस कथन पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि कलिंग युद्ध में मरने वालों की जो संख्या अशोक के अभिलेख में बतायी गई है, उसमें काफी कृषक भी शामिल होंगे।

हमने पहले **सीता** या राजकीय भूमि की चर्चा की है। इन इलाकों में निश्चित रूप से स्वामित्व, जोत नीलामी और विक्री पर राजा और राज्य का लगभग पूर्ण अधिकार था। वस्तुतः, अर्थशास्त्र में सीताध्यक्ष या कृषि निरीक्षक का जिक्र है, जो शायद इन इलाकों में कृषि कार्य का निरीक्षण करता होगा। ये इलाके निश्चित रूप से उपजाऊ होंगे और इनमें काफी उपज होती होगी। इन राजकीय खेतों के उद्भव के बारे में कुछ कह पाना मुश्किल है। यह संभव है कि पूर्व-मौर्य काल में ये खेत भूमिधरों के निजी नियंत्रण में रहे होंगे। इन्हीं इलाकों में खेती के लिए राज्य के निरीक्षण में दासों को नियुक्त किया गया होगा। अर्थशास्त्र में विस्तार से तृतीय तकनीक के विकसित ज्ञान का उल्लेख किया गया है; यह भी संभवतः इसी प्रकार के खेतों के संदर्भ में वर्णित है।

मौर्य राज्य के अन्य खेतिहर इलाकों को जनपद राज्य-क्षेत्र कहा जाता था। इन इलाकों में संभवतः निजी तौर पर लोग खेती करते थे। जातक कथाओं में बार-बार गहपति और ग्रामभोजकों की चर्चा आती है। ये भूमिपति थे, जो अपनी जमीन पर खेती करने के लिए मजदूरों की नियुक्ति करते थे। दूसरी तरफ, मजदूरों की स्थिति बहुत दयनीय थी, कहीं-कहीं दासों का भी जिक्र हुआ है। **सीता** और जनपद दोनों तरह के इलाकों में राजा व्यक्तिगत जमीन रख सकता था; परन्तु कहीं भी इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। इस तरह, हालांकि सम्पूर्ण भारत के भूमि-स्वामित्व के सभी पहलुओं पर विस्तार से चर्चा नहीं की जा सकती है परन्तु यह कहा जा सकता है कि गंगा घाटी में ही विभिन्न प्रकार की स्वामित्व-प्रणालियां क़ायम थीं। इसके कारण स्वाभाविकतः खेती की विभिन्न व्यवस्थाएं और कृषि विकास के कई स्तर सामने आए।

अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार की कृषि व्यवस्था की चर्चा की गई है, जिनका निरीक्षण अधिकारीगण किया करते थे। इसके अंतर्गत ऐसी भूमि की चर्चा की गई है, जिनपर राज्य अथवा राजा का सीधा नियंत्रण था। इसके अतिरिक्त जमीन और मकान की विक्री का भी जिक्र किया गया है। इससे पता चलता है कि एक व्यक्ति ज़मीन का मालिक हो सकता था, परन्तु वह उतनी ही ज़मीन अपने अधिकार में रख सकता था, जितनी वह खुद जोत सके।

राज्य-स्वामित्व वाली भूमि में खेती की सफलता का महत्वपूर्ण कारण था राज्य द्वारा सिंचाई की सुविधा प्रदान करना। खेतिहरों की भलाई के लिए जल-आपूर्ति संबंधी कुछ नियम बनाए गए थे। मेगस्थनीज बताता है कि जमीन मापने और खेत में पानी पहुंचाने वाली नालियों का निरीक्षण करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि जहां राज्य द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी, एक नियमित जल-कर वसूल किया जाता था। यह कुल उत्पादन का पांचवां, चौथाई या तिहाई हिस्सा होता था। चूंकि यह कर केवल सिंचित भूमि पर लगाया जाता था, अतः इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि राज्य कम वर्षा वाले क्षेत्र में ही सिंचाई सुविधा उपलब्ध करवाता था ताकि इन इलाकों में सिंचाई की नियमित आपूर्ति से अच्छी फसल प्राप्त की जा सके। चन्द्रगुप्त मौर्य के एक राजपाल पुष्यगुप्त ने गिरनार के निकट सौराष्ट्र में एक बांध बनवाया था, जिससे एक विशाल झील तैयार हो सके। यह **सुदर्शन तड़ग** झील के नाम से जाना जाता है। यह झील काफी प्रसिद्ध है। यह झील आठ सौ वर्षों यानी पांचवीं शताब्दी ई. तक सिंचाई का स्रोत बनी रही।

19.3.2 भू-राजस्व संगठन

यूनानी लेखक बताते हैं कि कुछ गांव कर से मुक्त थे। परन्तु ऐसे गांव अपवाद थे और वस्तुतः ये ऐसे गांव थे, जिनसे सैनिकों की नियुक्ति की जाती थी। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि नई भूमि पर खेती को प्रोत्साहित करने के लिए एक सीमित समय के लिए कुछ गांवों को कर से मुक्त रखा जाता होगा।

मौर्य राज्य की आमदनी का स्थायी और अनिवार्य स्रोत भू-राजस्व ही हो सकता था। अतः लोगों से अधिक से अधिक कर वसूलने के लिए भू-राजस्व प्रणाली को सुव्यवस्थित किया गया। सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि प्राचीन भारत की कर-व्यवस्था के क्षेत्र में मौर्य शासन एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मौर्य शासक भू-राजस्व के निर्धारण पर विशेष बल देते थे और करों का लेखा-जोखा रखने के लिए अलग से एक विभाग था, जिसका प्रमुख अधिकारी समाहर्ता कहलाता था। कोषाध्यक्ष सन्निधाता के नाम से जाना जाता था। चूंकि राजस्व वस्तु के रूप में भी प्राप्त किया जाता था। अतः इस प्रकार की आय को संग्रहीत करना सन्निधाता का ही कार्य था।

यूनानी लेखकों के अनुसार, किसान कर के रूप में कुल उपज का चौथाई हिस्सा राज्य को देते थे। उनके अनुसार किसान नजराना भी देते थे। भूमि कर (भाग) राजस्व का प्रमुख आधार था। ग्रन्थों में प्राप्त विवरण के अनुसार भाग कुल उपज का छठा हिस्सा होता था। लेकिन ऐसा अनुमान है कि मौर्य काल में यह हिस्सा चौथाई तक पहुंच गया था। अशोक लुम्बिनी शिलालेख में कहता है कि बुद्ध के जन्म स्थल लुम्बिनी की यात्रा के दौरान उसने उस गांव को बलि कर से मुक्त कर दिया गया और भाग कर को घटाकर कुल उपज का आठवां हिस्सा कर दिया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि बुद्ध के प्रति अगाध श्रद्धा रखने के बावजूद अशोक ने उस गांव (लुम्बिनी) को पूर्णतया करमुक्त नहीं किया।

भू-राजस्व का एक प्रचलित तरीका था — बटाई। बंटाईदारों को पहले बीज, हल-बैल आदि और खेती के लिए जमीन दी जाती थी। इस मामले में कृषक संभवतः कुल उपज का आधा हिस्सा राज्य को दे देता था।

इन करों के अतिरिक्त किसानों को दूसरे कई प्रकार के नजराने पेश करने पड़ते थे। मौर्यों ने कुछ नये कर शुरू किए और पहले से लगे करों को और भी प्रभावी बनाया। पिंड कर एक प्रकार का रिवाजी कर था, जो किसानों से समय-समय पर लिया जाता था। इस कर का निर्धारण सामूहिक रूप में होता था, जिसमें कई गांव शामिल होते थे। अकसर गांवों को उनके क्षेत्र से गुजरती हुई राजकीय सेना के लिए खाद्य सामग्री की व्यवस्था करनी पड़ती थी। हिरण्य नामक कर के स्वरूप के बारे में ठीक से पता नहीं है, परन्तु संभवतः यह एक प्रकार का नकद कर था क्योंकि हिरण्य का अर्थ सोना होता है। वैदिक काल से चला आ रहा बलि कर मौर्यों के अधीन भी कायम रहा। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने जिन करों का जिक्र किया है, उनसे कृषकों पर अतिरिक्त भार ही पड़ता होगा। अर्थशास्त्र में इस बात की भी सलाह दी गई है कि यदि इसके बावजूद राज्य को अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए और अधिक करारोपण करना पड़े तो आपात स्थिति के दौरान लागू किए जाने वाले करों की सहायता ले सकता है। इस प्रकार के करों में प्रमुख है युद्ध कर, जिसे प्रणय कहा जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है प्रेम से दिया गया उपहार। इस कर का उल्लेख सबसे पहले पाणिनि ने किया था, परन्तु पहली बार विस्तार से इसका विवरण अर्थशास्त्र में ही मिलता है। यह कुल उपज का एक-तिहाई या एक-चौथाई होता था तथा यह हिस्सा भूमि की उर्वरता पर निर्भर था। इस कर का उल्लेख करते हुए प्रायः इसे स्वेच्छा से दिया जाने वाला कर बताया जाता है, परन्तु यथार्थ में यह निश्चित रूप से अनिवार्य कर हो गया होगा। इसके अतिरिक्त आपातकाल में किसानों को दो फसल उगाने के लिए बाध्य किया जा सकता था। इस बात पर बार-बार बल दिया गया है कि अकाल के समय में इस प्रकार का कदम उठाना जरूरी हो जाता था, क्योंकि इस समय भू-राजस्व की वसूली काफी कम हो जाती होगी।

भू-राजस्व मौर्य अर्थव्यवस्था का आधार था, इसलिए अर्थशास्त्र में राज्य की राजस्व व्यवस्था पर काफी गंभीरता और सावधानीपूर्वक विचार किया गया है। काफी सूझ-बूझ के साथ भूमि की उर्वरता के आधार पर विभिन्न गांवों पर अलग-अलग कर लगाए जाने का प्रावधान रखा गया है। विभिन्न प्रकार के राजस्व वसूल करने वाले और उसका निर्धारण करने वाले अधिकारियों की विशेष रूप से इसमें चर्चा की गई है। अतः यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया जा सकता है कि मौर्य काल में करारोपण और वसूली की पद्धति सुदृढ़ थी और राज्य के बड़े हिस्से से अपार राजस्व वसूल किया जाता था। इसी राजस्व के बल पर सरकारी तंत्र और सेना का रख-रखाव संभव हो सका।

बोध प्रश्न 2

1) कॉलम-I में कुछ संस्कृत शब्द दिए गए हैं और कॉलम- II में उनका अर्थ दिया गया है। इनका सही मिलान नीचे दिए गए कोड के माध्यम से कीजिए। सही कोड पर √ का चिह्न लगाइये।

कॉलम-I	कॉलम-II
i) जनपद निवेश	क) भूमिधर वर्ग
ii) सीताध्यक्ष	ख) राजकीय भूमि का अधिकारी
iii) गहपति	ग) राजस्व निर्धारक
iv) समाहर्ता	घ) बसने की प्रक्रिया
	ङ) कोषाध्यक्ष

क) I II III IV
ङ ख ग घ

ख) I II III IV
घ ङ क ग

ग) I II III IV
घ ख क ग

घ) I II III IV
ग ख घ क

2) निम्नलिखित में से किस राजस्व की वसूली नकद होती थी (सही उत्तर के सामने √ का चिह्न लगाइए)।

क) कर

ख) भाग

ग) हिरण्य

घ) प्रणय

3) आपात स्थिति में राज्य कौन-कौन से राजस्व संबंधी कदम उठा सकता था?
(पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....

....

....

....

....

4) मौर्य काल के प्रमुख करों और राजस्व पदाधिकारियों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

19.4 व्यापार और नगर

मगध साम्राज्य में गैर-कृषि अर्थव्यवस्था का विकास दो दिशाओं में हुआ :

i) व्यापार और वाणिज्य का प्रसार

ii) नए नगरों और बाजारों की स्थापना

कृषि-अर्थव्यवस्था ने मौर्य साम्राज्य को (खासकर गंगा घाटी में) एक मजबूत आर्थिक आधार प्रदान किया। परन्तु इस मजबूत आधार को समूचे भारत में प्रसारित करने का कार्य व्यापारिक अर्थव्यवस्था ने किया।

19.4.1 व्यापारिक संगठन

इस काल में व्यापार आकस्मिक रूप से विकसित नहीं हुआ। यह लम्बे आर्थिक परिवर्तन का एक हिस्सा था, जिसकी शुरुआत मौर्य काल से काफी पहले हो चुकी थी। जातक कथाओं में बार-बार ऐसे व्यापारियों के काफिलों का जिक्र आता है जो काफी मात्रा में सामान देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में पहुँचाते थे। मौर्य शासन द्वारा सुरक्षा प्रदान किए जाने के कारण आंतरिक व्यापार तेजी से फला-फूला। पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया को जाने वाले प्रमुख व्यापारिक मार्ग उत्तर पश्चिमी भारत से होकर गुजरते थे। उत्तरी भारत के प्रमुख व्यापारिक मार्ग गंगा नदी के किनारे-किनारे और हिमालय की तलहटी से गुजरते थे। मगध साम्राज्य के प्रमुख केंद्र – राजगृह और कौशाम्बी (इलाहाबाद के निकट) – इस प्रकार आपस में जुड़े हुए थे। मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र बड़े महत्वपूर्ण स्थल पर बसा हुआ था, जहां से वह चारों ओर से नदी और स्थल मार्ग से जुड़ा हुआ था उत्तरी मार्ग वैशाली होता हुआ श्रावस्ती और कपिलवस्तु तक जाता था। कपिलवस्तु से यह मार्ग कलसी, हजारा होता हुआ पेशावर तक जाता था। मेगस्थनीज ऐसे मार्ग की भी चर्चा करता है; जो उत्तर-पश्चिमी प्रदेश को पाटलिपुत्र से जोड़ता था। दक्षिण की ओर पाटलिपुत्र एक मार्ग द्वारा मध्य भारत तक और दक्षिण-पूर्व में कलिंग तक जुड़ा हुआ था। यह पूर्वी मार्ग अन्ततः दक्षिण की ओर मुड़ जाता था और आंध्र तथा कर्नाटक तक पहुंचता था। पूर्वी मार्ग का दूसरा हिस्सा गंगा डेल्टा होता हुआ ताम्रलिप्ति तक पहुँचता था, जहाँ से दक्षिण और दक्षिण-पूर्व इलाके तक जाया जा सकता था। कौशाम्बी से पश्चिम की ओर एक रास्ता उज्जैन तक जाता था। यह रास्ता और आगे पश्चिम में गुजरात के समुद्र तट तक नर्मदा के दक्षिण पश्चिम तक जाता था, जिसे **दक्षिणपथ** यानी दक्षिणी रास्ता के नाम से जाना जाता था। पश्चिमी एशिया के देशों का रास्ता तक्षशिला (इस्लामाबाद के निकट) होकर जाता था।

नई बस्तियों के विस्तार से लोगों का आवागमन बढ़ा और इसके परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में संचार कायम हुआ। इससे स्वाभाविकतः व्यापार में वृद्धि हुई। राज्य के प्रयत्न से गंगा घाटी के वन काटे गए और इस प्रकार तटों के साफ हो जाने से नदी यातायात में तेजी आई। बिंदुसार और अशोक के शासनकाल में शांति की नीति अपनाई गई और यूनानियों से मित्रतापूर्ण संबंध कायम किया गया इससे विदेशी व्यापार में भी वृद्धि हुई।

व्यापार के अनेक तरीके विकसित थे। यह सहज रूप से उत्पादन के तरीके और इसके संगठन से जुड़ा हुआ था। उत्तर भारत में कारीगर उत्पादन या हस्तशिल्प उद्योग श्रेणियों के आधार पर संगठित था। यह व्यवस्था मौर्य काल के पहले से चली आ रही थी। मौर्यों के अधीन शिल्पियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। प्रत्येक श्रेणी नगर के एक भाग में बसी हुई थी जिससे एक श्रेणी के सदस्य एक साथ रह सकते थे और कार्य कर सकते थे। आम तौर पर उनमें पारिवारिक संबंध पाया जाता था। ज्यादातर पुत्र अपने पिता के व्यवसाय को अपनाते थे और इस प्रकार हस्तशिल्प अधिकांशतया वंशानुगत होता था। उस काल के अभिलेखों में इस बात का उल्लेख है कि मौर्य काल के बाद ये श्रेणियां काफी शक्तिशाली हो गयीं। मेगस्थनीज ने भी श्रेणियों की गणना सात जातियों/वर्गों में की है। इस काल की श्रेणियों में प्रमुख थे—विभिन्न प्रकार के धातुकर्मी, बढ़ई, कुम्भकार, चर्मकार, चित्रकार, बुनकर आदि। उत्तरी काली पालिश के बर्तन हस्तशिल्प के उत्तम नमूने हैं। यह बर्तन बनाने का विशेषज्ञतायुक्त हस्तशिल्प था और गंगा घाटी के बाहर कम ही पाया जाता है। इससे पता चलता है कि देश के इस भाग में यह तकनीक विकसित हुई और शायद यह एक विशेष प्रकार की मिट्टी से ही बनाया जा सकता था।

शिल्पियों के समान व्यापारी भी श्रेणियों में विभक्त थे। व्यापारियों का एक समूह किसी खास शिल्पी समुदाय से जुड़ा होता था, जिससे वितरण में सुविधा होती थी। वे भी शहर के किसी खास हिस्से में रहते थे, जो बाद में उनके व्यवसाय से सम्बद्ध हो गया।

यह ध्यान देने की बात है कि मौर्यों के शासनकाल में राज्य प्रशासन ने व्यापार के संगठन पर भी ध्यान दिया। इस प्रकार के प्रशासनिक नियंत्रण से उत्पादन और व्यापार में काफी सुधार हुआ। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रशासन ने प्रत्यक्षतः श्रेणी संगठन में हस्तक्षेप किया और उसे बदलने की कोशिश की। राज्य का नियंत्रण वस्तुओं के वितरण पर होता था और यहां तक कि राज्य खुद उत्पादक भी बना। दूसरे स्तर पर इसने कुछ शिल्पों को कुछ-कुछ लघु उद्योग के रूप में विकसित किया। इस क्रम में उसने अस्त्र बनाने वाले, जहाज बनाने वाले, पत्थर काटने वाले आदि शिल्पियों को सीधे नियुक्त किया। इन्हें कर नहीं देना पड़ता था क्योंकि ये राज्य को अनिवार्य श्रम सेवा अर्पित करते थे। परन्तु अन्य शिल्पियों जैसे सूत कातने वाले, बुनकर तथा खानों आदि में काम करने वालों को कर देना पड़ता था।

व्यापार और वस्तु उत्पादन को व्यवस्थित करने के ये सारे कार्य राज्य नीति का हिस्सा थे। आर्थिक गतिविधियों और राजस्व पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखने के लिए राज्य को यह नीति अपनानी पड़ी।

मेगस्थनीज ने वाणिज्य अधीक्षक का जिक्र किया है, जो वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करता था और बाजार में किसी वस्तु की मात्रा, बहुत अधिक आ जाने की स्थिति में हस्तक्षेप भी करता था। **अर्थशास्त्र** में उसका उल्लेख **पण्याध्यक्ष** के रूप में हुआ है। इसमें कई ऐसे अधिकारियों का जिक्र है, जो विभिन्न आर्थिक गतिविधियों की देख-रेख करते थे। **समस्थाध्यक्ष** बाजार की निगरानी करता था और व्यापारियों पर नियंत्रण रखता था। **पौटवाध्यक्ष** या माप-तौल अधीक्षक माप-तौल के स्तर पर सख्त नियंत्रण रखता था। **नावाध्यक्ष** के अधीन राज्य की नावें रहती थीं, जिनसे यातायात होता था। वह नदी यातायात पर नियंत्रण रखने में सहायता प्रदान करता था और उतराई भी वसूल करता था। सभी व्यापारियों को कर और चुंगी शुल्क देना पड़ता था, यह शुल्क वस्तु के मूल्य के 1/5वां हिस्से से 1/25वें हिस्से तक होता था। इस शुल्क की वसूली का काम **शुल्काध्यक्ष** करता था।

राज्य द्वारा उत्पादित वस्तुओं की देख-रेख दूसरे अधिकारीगण किया करते थे। इस प्रकार की वस्तुओं को **राजपण्य** कहते थे। राज्य उसी वस्तु के उत्पादन में हाथ लगाता था जो उसके काम-काज के लिए अनिवार्य और जिनसे अच्छा राजस्व प्राप्त हो सकता था। कभी-कभी राज्य की वस्तुएं निजी व्यापारियों द्वारा भी वितरित की जा सकती थी, क्योंकि उनकी वितरण-व्यवस्था सुव्यवस्थित थी और काफी दूर तक फैली हुई थी। इन परिवर्तनों के बावजूद यह कहना गलत नहीं होगा कि अधिकांश शिल्पी या तो निजी तौर पर या श्रेणी-व्यवस्था के अंतर्गत काम करते रहे। ये श्रेणियां इन उत्पादकों के बीच सौहार्द स्थापित करने का काम करती थीं, साथ ही साथ उन पर नियंत्रण भी रखती थीं। यहां तक कि शिल्पी भी श्रेणी में शामिल होना फायदेमंद मानते थे, क्योंकि अकेले काम करने में खर्च अधिक आता था और प्रतियोगिता काफी बढ़ जाती थी। राज्य को भी इन श्रेणियों से कर वसूलने में सुविधा होती थी। अंततः स्थानीय तौर पर केंद्रित होने और एक खास शिल्प में विशेषज्ञता हासिल करने के कारण उस व्यापार विशेष में खूब तरक्की हुई। परन्तु इस काल में श्रेणियां सम्पूर्ण भारत में नहीं फल-फूल रही थीं। खासकर दक्षिण में, मौर्य काल के बाद भी उनका उल्लेख मुश्किल से मिलता है। श्रेणियों के विकास के लिए शहरी वातावरण अधिक उपयुक्त था। अगले भाग में हम इस शहरी वातावरण की चर्चा करेंगे।

19.4.2 शहरी अर्थव्यवस्था का विकास

मौर्य काल से पहले शहरीकरण की जो प्रक्रिया आरंभ हुई थी, मौर्य काल में उसका आगे विकास हुआ। शहर में अधिकांशतः शिल्पी, व्यापारी और सरकारी कर्मचारी रहते थे। शहरी अर्थव्यवस्था का निर्माण सामान के निर्माताओं और व्यापारियों की गतिविधियों पर आधारित होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में व्यापारिक लेन-देन भी बढ़ता है। इस काल में यह लेन-देन गंगा घाटी से पश्चिमी और मध्य भारत, दक्कन तथा दक्षिणी भारत तक फैल गया। ग्रामीण बस्तियों के प्रसार और गहपतियों की समृद्धि ने शहरी केंद्रों के और प्रसार के लिए सामाजिक आधार प्रदान किया। कई मामलों में अमीर ग्रामीण परिवारों ने शहरों से सम्पर्क स्थापित किया और व्यापारी-समुदायों को वित्तीय सहायता प्रदान की।

इस इकाई के आरंभ में हमने मौर्य काल के भौतिक अवशेषों का जिक्र यह दिखाने के लिए किया था कि इस काल में शहरी केंद्रों की संख्या में निश्चित रूप से वृद्धि हुई। हालांकि इस वृद्धि को मापना लगभग असंभव है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में **दुर्गनिवेश** या **दुर्गविधान** का जिक्र है इससे पता चलता है कि शहरों को दीवार से घेरा गया था। यह भी बताया जाता है कि इन शहरों में पुजारी, सैनिक, व्यापारी, शिल्पी और अन्य लोग रहते थे। इस उद्धरण में शहर की रक्षा के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। इसमें उनकी बनावट का भी उल्लेख है। इसका उद्देश्य था — आर्थिक नियंत्रण को सुव्यवस्थित करना। वस्तुतः **अर्थशास्त्र** में शहरों (दुर्गों) को जनपदों के समान राजस्व के स्रोत के रूप में देखा गया है। शहरों से प्राप्त कर से राज्य को अच्छी आमदनी होती थी, अतः मौर्यों ने शहर के उत्थान और प्रशासन पर विशेष ध्यान दिया। एक बात ध्यान देने की है कि केवल दुर्ग या राजधानी में रहने वाली श्रेणियों पर कर लगाए जाने का जिक्र हुआ है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्रामीण इलाकों में रहने वाली श्रेणियां करों से मुक्त थी। इस का कारण यह हो सकता है कि शहर में रहने वाले लोगों को नियंत्रित और व्यवस्थित करना ज्यादा आसान होता है।

मेगस्थनीज ने मौर्यों की राजधानी का विस्तार से वर्णन किया है, इससे यह भी पता चलता है कि शहर का प्रशासन कैसा था और शहरी अर्थव्यवस्था के कौन-से हिस्से राज्य के हित में नियंत्रित किए जाते थे। वह बताता है कि पाटलिपुत्र का प्रशासन तीस अधिकारियों के जिम्मे था, ये अधिकारी छह समितियों में विभक्त थे, प्रत्येक समिति में पांच-पांच सदस्य थे। इन छह समितियों में से चार आर्थिक कार्यकलापों से सम्बद्ध थीं। ये समितियां औद्योगिक उत्पादन, व्यापार और वाणिज्य तथा तैयार माल की सार्वजनिक बिक्री का निरीक्षण करती थीं और बेचे जाने वाले सामान पर कर वसूल करतीं थीं। अन्य दो समितियां विदेशियों के कल्याण

और जन्म तथा मृत्यु के पंजीकरण से सम्बद्ध थीं। आर्थिक गतिविधियों के समुचित विकास की दृष्टि से नगरों में कानून और व्यवस्था संबंधी प्रशासन भी महत्वपूर्ण हो गया।

नगर प्रशासन का यह विवरण मौर्य साम्राज्य के केंद्र में बसे सभी प्रमुख बड़े शहरों पर लागू होता है। पर्याप्त सूचनाओं के अभाव में यह बताना कठिन है कि छोटे शहरों, तटीय शहरों और तीर्थ-स्थलों के प्रशासन का सही स्वरूप क्या था। इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि मौर्यों की अर्थव्यवस्था ने शहरों के उदय और समृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शहरी अर्थव्यवस्था की समृद्धि के लिए लोगों का आवागमन और विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच परस्पर संवाद कायम होना आवश्यक है। और इस काल में ऐसा संभव हुआ क्योंकि साम्राज्य के बड़े शहरों और प्रमुख क्षेत्रों में काफी हद तक राजनीतिक स्थिरता व्याप्त थी।

शहरी अर्थव्यवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें मुद्रा का चलन बढ़ा और लेन-देन मुद्रा में होने लगा। हालांकि मुद्रा का चलन मौर्यों के जमाने से पहले से चला आ रहा था, परन्तु वाणिज्य के विकास के कारण मौर्य काल में यह आम उपयोग की चीज हो गई। व्यापार में मुद्रा अर्थव्यवस्था की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है, परन्तु अर्थव्यवस्था में मुद्रा के बढ़ते हुए महत्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि अधिकारियों को भी शायद वेतन नकद ही दिया जाता था। अर्थशास्त्र में इस बात का जिक्र है कि 48,000 पण और 60,000 पण के बीच वार्षिक वेतन देने का प्रावधान था। इस प्रकार की शक्तिशाली नकदी अर्थव्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाने के लिए सिक्कों की ढलाई और चांदी तथा तांबे जैसे धातुओं का महत्व बढ़ गया होगा। मौर्यकालीन पंच मार्क्ड चांदी के सिक्के इस बात के प्रमाण हैं कि मौर्यों ने मुद्रा अर्थव्यवस्था को सुव्यवस्थित रूप में लागू किया। ये पंच मार्क्ड सिक्के मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार में पाए गए हैं, जो साम्राज्य का केंद्रीय स्थल था।

मार्यों के अधीन शहरी अर्थव्यवस्था पर राज्य का पूरा नियंत्रण था। इस क्रम में राज्य कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्रों को एकाधिकार क्षेत्र में परिणत कर देता था। **अर्थशास्त्र** में खनिज अधीक्षक (**आकराध्यक्ष**) का जिक्र हुआ है जो नई खानों की खोज करना था और पुरानी खानों को फिर से खोलने का प्रयत्न करता था। नमक खनन के क्षेत्र में भी राज्य का एकाधिकार था। विभिन्न प्रकार के धातुओं का उपयोग केवल सिक्का ढालने के लिए ही नहीं होता था, बल्कि उससे अस्त्र भी बनाए जाते थे। इसी कारण अर्थशास्त्र में लौह अधीक्षक (**लोहाध्यक्ष**) का जिक्र हुआ है। सैनिकों के लिए अस्त्र उपलब्ध कराने के अलावा, राज्य कृषि के लिए औजार भी प्रदान करता था। खनन और खनिज पदार्थों के व्यापार पर एकाधिकार से मौर्य साम्राज्य काफी महत्वपूर्ण कच्चे मालों को अपने कब्जे में रख सका। इनके समुचित उपयोग के फलस्वरूप कृषि और कृषि क्षेत्रों में उत्पादन काफी बढ़ा।

एक बार शहरी केंद्रों पर आर्थिक नियंत्रण स्थापित होने और इनके प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के बाद, इन शहरों के माध्यम से विभिन्न जनपदों पर नियंत्रण मजबूत किया गया। वाणिज्यक लेन-देन में वृद्धि होने कारण, आदान-प्रदान और व्यापार के केंद्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। अगले उपभाग में हम इस बात पर विचार करेंगे कि किन विभिन्न तरीकों से सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन मौर्यकालीन भारत के विभिन्न हिस्सों तक पहुंचा। अर्थव्यवस्था के दूसरे मामलों के समान ही इन केंद्रों पर मौर्यों का नियंत्रण विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न स्तर का था।

19.4.3 मौर्यकालीन भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

ऊपर दिए गए विवरण से यह स्पष्ट है कि कृषि, व्यापार और उद्योग पर राज्य का नियंत्रण मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी। हम यह भी स्पष्ट कर चुके हैं कि राज्य के निर्वाह के लिए विभिन्न प्रकार के करारोपण आवश्यक थे। मौर्य साम्राज्य को सुव्यवस्थित रूप में चलाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्रोत की आवश्यकता थी। मगध और उसके आसपास के इलाकों से प्राप्त कर साम्राज्य के कार्यकलापों के लिए पूरे नहीं पड़ते थे। अतः, देश के दूसरे प्रदेशों के स्रोतों पर नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की गई। इसके लिए कलिंग, कर्नाटक के पठार और पश्चिम भारत का उदाहरण लिया जा सकता है, जहां अशोक के अभिलेख पाए जाते हैं। इस प्रकार के सुदूर प्रदेशों की कुछ खास आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए मौर्य शासक विभित्र पद्धतियां अपनाते थे। यह पद्धति उस प्रदेश से प्राप्त स्रोतों पर आधारित होती थी। उदाहरण स्वरूप कलिंग की विजय से मौर्यों को एक उर्वर कृषि भूमि मिली और उन मार्गों पर नियंत्रण स्थापित हो सका, जो दक्षिण में स्थित खानों तक जाते थे। इसी प्रकार कर्नाटक पर कब्जा जमाने का मूल उद्देश्य सोने और बहुमूल्य रत्नों के स्रोतों पर अधिकार स्थापित करना था।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिन इलाकों में मौर्य अभिलेख प्राप्त नहीं हुए हैं, उन इलाकों पर आर्थिक नियंत्रण किस प्रकार का था? रोमिला थापर का विचार है कि ऐसे क्षेत्रों में मौर्यों के राजनीतिक और

आर्थिक नियंत्रण का आकलन मुश्किल है। उत्तरी दक्कन, पंजाब, सिंध और राजस्थान इसी प्रकार के इलाके थे। इनमें से जिन इलाकों में मौर्यों का प्रभाव था, वहां भी बड़े पैमाने पर किसी प्रकार के फेर-बदल का प्रयत्न नहीं किया गया। मौर्यों का मुख्य उद्देश्य स्रोतों का दोहन था और वह इसके लिए क्षेत्र विशेष के प्रभावशाली वर्ग पर निर्भर रहते थे। यह ध्यान देने की बात है कि इस काल में गंगा घाटी के बाहर अधिकांश प्रदेशों में आर्थिक विकास का स्तर एक-सा नहीं था। इस असमान विकास के कारण इन सभी क्षेत्रों मे कोई मूलभूत परिवर्तन लाना और पुनर्रचना करना काफी कठिन काम था।

अर्थशास्त्र और अशोक के अभिलेखों में जनजातियों या कबीलों (अतविक, अरण्यकार) का जिक्र हुआ है, जो साम्राज्य के कई हिस्सों में बसे हुए थे। अन्य इलाकों की तरह इनके इलाके विकसित नहीं थे। कौटिल्य ने राज्य को सुझाव दिया कि इन कबीलों को व्यवस्थित कृषि जीवन की ओर उन्मुख किया जाना चाहिए। उसने अर्थशास्त्र में पूरे एक अध्याय में कबीलाई व्यवस्था को भंग करने और उसके लिए सही और गलत — सभी तरह के तरीके अपनाने की सलाह दी है। अधिक से अधिक भूमि पर खेती करने के लिए आवश्यक था कि पांच से दस परिवारों के एक समूह को एक साथ स्थाई तौर पर बसाया जाए। अशोक इन कबीलों को एक पिता की निगाह से देखता था, परन्तु वह उन्हें एक जगह चेतावनी भी देता है कि अगर उन्होंने महामात्यों के आदेश का पालन न किया तो उन्हें सख्त सजा दी जाएगी। जंगल मे रहने वाले इन कबीलों पर नियंत्रण दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण था :

i) पहला, नई खेतिहर बस्तियों की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक था कि कबीले उनके आर्थिक विकास में बाधा न पहुंचाएं।

ii) दूसरे, ज्यादातर व्यापार मार्ग कबीलाई क्षेत्रों के बगल से या उनसे होकर गुजरते थे। अतः इन क्षेत्रों पर नियंत्रण आश्यक था।

यह बता पाना तो मुश्किल है कि कितने कबीलाई समूह कृषक बन पाए, परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि इस प्रक्रिया को राज्य ने बढ़ावा दिया। भारत के विभिन्न भागों के पुरातात्विक प्रमाण बताते हैं कि बहुत से ऐसे इलाके थे, जो इस युग में पूरी तरह शहरी केंद्र के रूप में विकसित नहीं थे। तीसरी शताब्दी ई.पू. के महापाषाणीय स्थलों, दक्कन और दक्षिण भारत के कई हिस्सों को देखने से पता चलता है कि वहां खेती आरंभिक अवस्था में थी, चरवाहे समुदायों का अस्तित्व था और शिल्प उद्योग की सीमित जानकारी थी।

तीसरी शताब्दी ई.पू. में भारत जैसे विशाल देश में पूर्ण रूप से परिवर्तन लाना संभव भी नहीं था, परन्तु मौर्य शासन के दौरान कुछ भौतिक और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की शुरुआत हो चुकी थी, जो आगे की शताब्दियों में फलीभूत हुई।

आइए, इन परिवर्तनों पर भी संक्षेप में विचार कर लें। मौर्य साम्राज्य के कई क्षेत्रों जैसे उत्तरी और पश्चिमी बंगाल, कलिंग, दक्कन और इनके दक्षिण प्रदेश में आरंभिक ऐतिहासिक सांस्कृतिक पद्धति की शुरुआत मौर्यकाल या मौर्यकाल के बाद की अवधि से मानी जाती है। इसका अर्थ यह है कि मौर्यकाल और मौर्यकाल के बाद प्रभावकारी मानवीय बस्तियों (जैसे शहरों और नगरों) का विकास हुआ है, जिसमें विभिन्न सामाजिक समूह रहा करते थे। वे सिक्कों का उपयोग करते थे, उनकी एक लिपी थी और काफी मात्रा में वे परिष्कृत वस्तुओं का सेवन करते थे। भौतिक संस्कृति के क्षेत्र में ये परिवर्तन इस बात को स्पष्ट करते हैं कि परिवर्तन केवल तकनीक और भौतिक जीवन में ही नहीं आया बल्कि सामाजिक संगठन और विचारों में भी बदलाव आया। सामाजिक संगठन में अधिक जटिलता आयी। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक समूहों के बीच और अन्ततः एक संस्था के रूप में राज्य में अलगाव पैदा हुआ। मौर्यों के बाद कई क्षेत्रों में स्थानीय राज्य विकसित हुए। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि मगध साम्राज्य के संपर्क में आने वाले भारत के अनेक हिस्सों में सामाजिक-आर्थिक बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई जो समाज में हो रहे अधिशेष उत्पादन से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी।

बोध प्रश्न 3

1) रिक्त स्थान की पूर्ति कोष्ठक में दिए विकल्पों में से कीजिए :

क) अर्थशास्त्र में खनन अधिकारी को .... कहा गया है।

(लोहाध्यक्ष, आकराध्यक्ष)

ख) कौटिल्य ने उच्चतम अधिकारियों का वेतन 48,000 .... बताया है।

(कर्सपण, पण)

ग) शहर में वाणिज्य की गतिविधियों पर नजर रखना .... का काम था।

(पण्याध्यक्ष/समताध्यक्ष)

घ) राज्य द्वारा उत्पादित वस्तुओं को .... कहा जाता था।

(दुर्गविधान/राज्यपण)

2) मौर्यकालीन भारत के प्रमुख व्यापार मार्गों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

....

....

....

3) वस्तुओं के उत्पादन और व्यापार में राज्य किस हद तक हस्तक्षेप करता था? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

19.5 सारांश

इस इकाई में हमने मौर्यकालीन भारत में हुए आर्थिक परिवर्तनों के विभिन्न पक्षों पर विचार विमर्श किया। नये शोधों का हवाला देते हुए हमने आपको बताया कि मौर्य भारत के सभी क्षेत्रों पर एक समान आर्थिक नियंत्रण नहीं था। साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों से उनके संबंध अलग-अलग आर्थिक हितों के आधार पर जुड़े हुए थे। साम्राज्य के प्रमुख क्षेत्रों पर उनका नियंत्रण स्वाभाविक रूप से अधिक प्रभावशाली और प्रत्यक्ष था। इस इकाई में आपने निम्नलिखित मुद्दों का अध्ययन किया :

- उत्पादन का भौतिक और सामाजिक आधार जो आर्थिक विकास का आधार था,
- कृषि विकास से प्रधान अवयव और भूमि स्वामित्व की पद्धतियाँ,
- कई प्रकार के भू-राजस्वों के माध्यम से राज्य ने कृषि अधिशेष को कैसे अपने कब्जे में किया,
- व्यापार में हो रहे परिवर्तन, व्यापार में संगठन और आर्थिक क्रियाकलाप के इस क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप, और
- शहरी अर्थव्यवस्था और तकनीक के विभिन्न पक्ष।

19.6 शब्दावली

गहपति : भूमिधर परिवार का मालिक मुखिया

महापाषाण : साधारण अर्थ में बडे-बडे पत्थरों से बनी कब्रों को महापाषाण कहा जाता है। ये महापाषाणी कब्र संस्कृति के विभिन्न कालों का प्रतिनिधित्व करती है, और यहाँ तक कि आज भी भारत के कुछ हिस्सों में महापाषाणी कब्र बनाई जाती हैं। प्रस्तुत खंड के संदर्भ में महापाषाण का संबंध विदर्भ, दक्कन और दक्षिण की संस्कृतियों से है, जहाँ महापाषाणीय सांस्कृतिक चरण के तुरन्त बाद आरंभिक ऐतिहासिक संस्कृति की शुरुआत स्थायी भवन निर्माण, नगरों और शहरों के उदय, लिपि और सिक्कों के उपयोग और राज्यों के उदय के रूप में हुई।

वर्ण : साधारण अर्थ में "जाति" या "वर्ग"। ब्राह्मणों द्वारा समाज चार वर्णों में विभाजित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

सन्निधाता : कोषाध्यक्ष

समाहर्ता: भू-राजस्व निर्धारित करने वाला अधिकारी

सीता भूमि : राजा की भूमि या राजा द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित भूमि।

19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (क) √ (ख) √ (ग) ×
2) इस प्रश्न का उत्तर देते समय तकनीक में हुए परिवर्तन, शहरीकरण के विकास भवन निर्माण में ईंटो का प्रयोग आदि बातों को शामिल कीजिए। देखें भाग 19.2.
3) इसमें आपको लिखना है कि किस प्रकार लोहे के उपयोग से जंगल कटे और खेती का काम तेजी से बढ़ा। देखें भाग 19.2 .

बोध प्रश्न 2

1) ग
2) ग
3) आप इस प्रश्न का उत्तर देते समय प्रणय कर और एक से अधिक फसल उगाने के प्रयत्न का उल्लेख करें। देखें उपभाग 19.3.2.
4) उपभाग 19.3.2 पढ़ें और फिर नाम लिखें।

बोध प्रश्न 3

1) क) आकाराध्यक्ष
   ख) पण
   ग) पण्याध्यक्ष
   घ) राजपण्य
2) गंगा नदी के साथ-साथ जाने वाले मार्ग तथा दक्षिण प्रदेशों से जोड़ने वाले अन्य मार्गों का उल्लेख करें। देखें उपभाग 19.4.1.
3) इस प्रश्न के उत्तर में नई बातें शामिल होनी चाहिए, जैसे मौर्य राज्य द्वारा उत्पादन और वाणिज्य गतिविधियों पर नियंत्रण। वे चार समितियाँ जो अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण रखती थीं। देखें उपभाग 19.4.2 और 19.4.3.